इकाई 12 आजाद हिन्द फौज (इंडियन नेशनल आर्मी)*

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 सुभाषचन्द्र बोसः ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ विद्रोह

12.3 प्रथम आई एन ए की स्थापना

12.4 नेताजी का पूर्वी एशिया में आगमन और आजाद हिन्द फौज या द्वितीय आई एन ए का गठन

12.5 आजाद हिन्द फौजः भारत की मुक्ति के लिए युद्ध

12.6 जापान की पराजय और विश्व युद्ध की समाप्ति

12.7 आई एन ए सैनिकों पर मुकदमा और राष्ट्रीय उभार

12.8 आजाद हिन्द फौज की उपलब्धियाँ

12.9 सारांश

12.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

12.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद, आपः

- आजाद हिन्द फौज (जिसे इंडियन नेशनल आर्मी या आई एन ए के रूप में भी जाना जाता है) के गठन के बारे में जानेंगे;
- उस प्रक्रिया को समझेंगे के जिससे सुभाषचन्द्र बोस इससे जुड़े;
- उनके करिश्माई नेतृत्व में आई एन ए के विकास की व्याख्या कर सकने में सक्षम होंगे;
- अंग्रेजों के खिलाफ लड़ाई में आई एन ए द्वारा निभाई गई भूमिका का विश्लेषण कर पाएँगे; और
- व्यापक भारतीय राष्ट्रवादी आंदोलन पर इस संघर्ष के प्रभाव के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।

12.1 प्रस्तावना

1940 के दशक के दौरान, इंडियन नेशनल आर्मी या आजाद हिन्द फौज, भारत छोड़ो आंदोलन के साथ, सर्वोत्तम संभव तरीके से स्वतंत्रता के लिए लड़ने की भारत की इच्छा के, हिंसक प्रयासों के माध्यम से भी, सबसे महत्वपूर्ण प्रतीकों में से एक के रूप में उभरी। 1940 के दशक की शुरुआत में यूरोप और दक्षिण-पूर्व एशिया में इंडियन नेशनल आर्मी बनाने के मुख्य रूप से तीन प्रयास हुए। ये सभी प्रयास प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सुभाषचन्द्र बोस (जिन्हें लोकप्रिय रूप से नेताजी के नाम से जाना जाता है) से जुड़े थे, जो भारत में ब्रिटिश कैद से भागकर विदेश चले गए थे। इस इकाई में, हम बोस और भारत के बाहर के अन्य भारतीयों द्वारा देश को औपनिवेशिक शासन से मुक्त कराने के

* इकाई लेखकः प्रो. शशिभूषण उपाध्याय

इन प्रयासों के बारे में चर्चा करेंगे। नेताजी की दंत कथा राजनैतिक, धार्मिक, भाषायी और क्षेत्रीय विभाजनों से परे है। वह वास्तव में एक अखिल राष्ट्रीय प्रसिद्ध व्यक्ति बन गए और आई एन ए राष्ट्रीय एकता के पक्ष में और साम्राज्यवाद के खिलाफ विद्रोह का एक प्रतीक बन गई।

12.2 सुभाषचन्द्र बोसः ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ विद्रोह

बोस कट्टर साम्राज्यवाद विरोधी थे, लेकिन उन्होंने यह भी माना कि आक्रामक और विस्तारवादी राष्ट्रवाद साम्राज्यवाद के केंद्र में था। वह इसके रचनात्मक, समतावादी और बन्धुत्व के अर्थ में एक राष्ट्रवादी थे। लेकिन उन्होंने राष्ट्रवादी अन्धभक्ति और उसके घोर भेदभाव पूर्ण चरित्र का समर्थन नहीं किया। नाजी जर्मनी के नस्लवाद और जापान की आक्रामकता से उन्हें विकर्षण महसूस हुआ। साथ ही उन्होंने अपने देश को आजाद कराने के लिए इन शक्तियों की मदद लेने की व्यवहारिक नीति अपनाई। भारत की आजादी के लिए उनकी तीव्र इच्छा ने उन्हें इन देशों में ठीक उसी समय सबसे भद्दे मानवाधिकारों उल्लंघन की अनदेखी करने के लिए प्रेरित किया, जब वे उनसे मदद की याचना कर रहे थे और अपने प्रयास के लिए उनकी सहायता प्राप्त कर रहे थे।

बोस कांग्रेस में राजनैतिक रूप से समाजवादियों के पक्ष में थे और महात्मा गांधी के साथ उनके कई मतभेद थे। सबसे पहले, जबकि गांधी अहिंसा में दृढ़ विश्वास रखते थे, बोस अपने देश को मुक्त कराने के साधन के रूप में हिंसा के उपयोग करने के खिलाफ नहीं थे। दूसरा, बोस ने सोचा था कि उद्योगवादी और आधुनिकीकरण से भारत का पुनुरुद्धार होगा, जबकि गांधी के अनुसार, भारत के गाँव के स्वायत्त विकास से देश का उद्धार होगा। तीसरा, जबकि बोस राजनैतिक रूप से मूलगामी परिवर्तनवादी और समाजवादी थे, जो भारत के गरीबों की परिस्थितियों को सुधारने के लिए वर्ग-संघर्ष की संभावना से इन्कार नहीं करते थे, गांधी का मानना था कि वर्ग-संघर्ष, अपने हिंसक चरित्र के कारण, अस्वीकार्य था और उन्होंने उत्पीड़ितों की विकट परिस्थितियों को सुधारने के लिए अमीरों की संभावित ट्रस्टीशिप में अपना विश्वास व्यक्त किया। 1938 में गांधी और अन्य लोगों के समर्थन से बोस को कांग्रेस के अध्यक्ष के रूप में चुना गया था। लेकिन जब बोस ने 1939 में इस पद के लिए फिर से चुनाव लड़ने का फैसला किया तो गाँधी और उनके सहयोगियों ने इसका विरोध किया। बोस ने गांधी के उम्मीदवार पट्टाभि सीतारमैया के खिलाफ जीत हासिल की लेकिन बाद में, गांधी और अन्य लोग के विरोध के कारण, उन्होंने अपने पद से इस्तीफा दे दिया और वे कांग्रेस से अलग हो गए।

जब द्वितीय विश्व युद्ध शुरू हुआ, तो ब्रिटिश उपनिवेशवाद के साथ अपने अनुभव के कारण अधिकांश भारतीय मित्र राष्ट्रों के समर्थन में नहीं थे। दरअसल, ब्रिटेन द्वारा भारत को एक युद्धशील राष्ट्र घोषित करने से पहले विश्वास में न लिए जाने से भारतीय नेता और अन्य लोग काफी विक्षुब्ध थे। अंग्रेजों ने स्वशासन के लिए भविष्य की किसी योजना का भी कोई वायदा नहीं किया था। इसके विरोध में कांग्रेस मंत्रिमंडलों ने इस्तीफे दे दिए। यहाँ तक कि महात्मा गांधी ने भी यह स्पष्ट कर दिया कि उन्हें 'फासीवादी या नाजी शक्तियों के बीच कोई अन्तर दिखाई नहीं पड़ता। सभी शोषक हैं और सभी अपने लक्ष्य को नियंत्रित करने के लिए आवश्यक हद तक निर्ममता का सहारा लेते हैं'।

बोस औपनिवेशिक शासन के सख्त खिलाफ थे और उन्होंने इस विचार को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया कि युद्ध में नाजियों के खिलाफ अंग्रेजों का समर्थन किया जाना चाहिए। उनके मुखर और सक्रिय विरोध के डर से ब्रिटिश औपनिवेशिक अधिकारियों ने जुलाई 1940 में उन्हें गिरफ्तार कर लिया। नवम्बर 1940 में, उन्होंने जेल में उपवास शुरू कर दिया जिसके बाद उन्हें जेल से रिहा कर दिया गया और दिसम्बर 1940 से नजरबंद कर दिया गया। वहाँ से वे उत्तर-पश्चिम सीमांत प्रांत से होते हुए

अफगानिस्तान भाग गए और फिर, सोवियत, जर्मन और इतालवी अधिकारियों की मदद से, उन्होंने सोवियत संघ की यात्रा की, और अन्त में वे 1941 में जर्मनी पहुँचे।

द्वितीय विश्वयुद्ध गंभीर रूप से प्रगति कर रहा था और हिटलर सोवियत प्रभाव से बाहर यूरोप के अधिकांश हिस्सों का अतिक्रमण कर चुका था। हिटलर और स्टालिन के बीच एक समझौता था जिसके कारण पूर्वी यूरोप में प्रभाव के क्षेत्रों को विभाजित कर दिया गया था। उत्तरी अफ्रीका में ब्रिटिश हार के बाद जर्मन हाथों में पड़े भारतीय सैनिकों को रिहा करने की संभावना पर जर्मन अधिकारियों के साथ बोस की शुरुआती बातचीत सफल नहीं रही। हिटलर और उसके संगी-साथियों को अभी भी इंग्लैंड को तटस्थ करने की उम्मीद थी और इसलिए वे भारत में अंग्रेजों और उनके साम्राज्य के खिलाफ कड़ा रुख नहीं अपनाना चाहते थे। अतः उन्होंने भारत की स्वतंत्रता के पक्ष में स्वयं को स्पष्ट रूप से घोषित करने से भी इन्कार कर दिया। मई 1941 में जब बोस ने भारतीय स्वतंत्रता की घोषणा का मसौदा तैयार किया तो जर्मन और इतावली दोनों सरकारें बहानेबाजी करके इसका समर्थन करने में देरी करती रहीं।

जून 1941 में जब जर्मनी ने सोवियत संघ पर आक्रमण किया, तो बोस की रणनीति को एक गंभीर झटका लगा। चूँकि जर्मन और इतालवी अभी भी अनेक प्रयास में उनका समर्थन करने की कसमें खा रहे थे, उन्होंने आशा बनाए रखी। कुछ प्रगति भी हुई क्योंकि कुछ भारतीय सैनिकों को अब जर्मन अधिकारियों द्वारा अंग्रेजों के खिलाफ लड़ने के लिए सुगठित इकाइयाँ बनाकर प्रशिक्षित किया जा रहा था। आम भारतीय सैनिकों को इस तरह के प्रशिक्षण में भाग लेने के लिए राजी करना आसान नहीं था क्योंकि उन्होंने पहले ही एक शपथ ले रखी थी और उन्हें गृह देश में अपने परिवारों के बारे में भी चिन्ता थी। लेकिन, जर्मनी में तमाम बाधाओं के बावजूद बोस दिसम्बर 1942 तक अंग्रेजों के खिलाफ लड़ने के लिए लगभग चार हजार भारतीय सैनिकों की चार बटालियन तैयार करने में कामयाब रहे।

इस पहली राष्ट्रीय सेना के साथ उन्होंने भारतीय तिरंगे को राष्ट्रीय ध्वज के रूप में, टैगोर के गीत 'जन–गन–मन–अधिनायक' को राष्ट्रगान के रूप में और 'जय हिन्द' को राष्ट्रीय अभिवादन के रूप में अपनाया जो जाति और पन्थ का ख्याल किए बिना सबके लिए सामान्य होंगे। ये नेता जी की देश की एकता के लिए स्थायी विरासत थे।

कुछ प्रगति के बावजूद जर्मन प्रतिक्रिया कमजोर रही और एक प्रभावी लड़ाकू भारतीयों की सेना जुटाने के लिए यूरोप में पर्याप्त रंगरूट नहीं थे। सितम्बर, 1940 में जापान के युद्ध में प्रवेश करने और दिसम्बर 1941 में अधिक आक्रामक रूप अपनाने से एशिया में गतिशीलता पूरी तरह से बदल गई। जापानी सेना के तेजी से आगे बढ़ने और दक्षिण-पूर्व एशिया में ब्रिटिश और अन्य यूरोपीय साम्राज्यवादी शक्तियों की हार ने बोस और भारत की मुक्ति की दिशा में उनकी रणनीति के लिए एक नयी संभावना का रास्ता खोल दिया।

फरवरी, 1942 में सिंगापुर के पतन ने उन्हें बहुत उत्साहित किया और वह पहली बार आजाद हिन्द रेडियो पर यह घोषणा करते हुए सामने आए कि 'सिंगापुर के पतन का अर्थ है ब्रिटिश साम्राज्य का पतन, उस अन्यायपूर्ण शासन का अन्त जिसका यह प्रतीक रहा था, और भारतीय इतिहास में एक नये युग की शुरुआत (सुगतो बोस में उद्धृत पृष्ठ 213)। यह रेडियों अक्टूबर, 1941 से अस्तित्व में था और यह इस अवधि के दौरान विदेशों में भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का सबसे महत्वपूर्ण मुखपत्र बन गया।

अंग्रेजों के लिए लड़ने वाले भारतीय सैनिकों की एक बड़ी संख्या जापानियों ने कैद कर ली थी। इन सैनिकों और इनके साथ दक्षिण-पूर्व एशिया में भारतीयों की आबादी के इर्द-गिर्द बोस की रणनीति घूमती थी।

इस समय से, उन्होंने नियमित रूप से अपने देश के लोगों को रेडियो पर संबोधित किया और उन्हें अंग्रेजों के खिलाफ कार्यवाही करने के लिए प्रेरित किया। जापानी जीत में, उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्य के घातक रूप से कमजोर होने की संभावनाओं को पाया, जिसे अब कगार पर धकेला जा सकता था। वह अब भारत की मुक्ति के लिए अंग्रेजों के खिलाफ लड़ने के लिए भारतीयों की एक बड़ी सेना जुटाने की संभावना के बारे में बहुत अधिक आशावान थे। वह जर्मनी में जापानी राजदूत के संपर्क में थे और अपने लक्ष्यों को साकार करने की योजना बना रहे थे। जापानी भी बोस के विचारों के प्रति अधिक ग्रहणशील और उपलब्ध थे। युद्ध के दौरान ब्रिटिश साम्राज्यवाद के उसके निम्नतम बिन्दु पर होने का लाभ उठाने के लिए बोस तुरंत आगे बढ़ना चाहते थे।

मई, 1942 में हिटलर बोस को जापान स्थानांतरित करने के लिए आवश्यक सहायता प्रदान करने के लिए सहमत हो गया। लेकिन हिटलर ने भारतीय स्वतंत्रता की घोषणा के विचार को टाल दिया। बोस हिटलर के साथ अपनी मुलाकात से संतुष्ट नहीं थे लेकिन कम से कम उन्होंने अपने हस्तानांतरण में जर्मन मदद का वायदा हासिल किया। वैचारिक मुद्दों पर और त्रिपक्षीय शक्तियों की घरेलू और अन्तर्राष्ट्रीय नीतियों पर, बोस ने बहुत ही व्यावहारिक रुख अपनाया। उन्होंने हिटलर की घोर नस्लवादी नीतियों के बारे में बात तक नहीं की। उन्होंने कहा कि 'भारत के इतिहास की इस निर्णायक घड़ी में, केवल वैचारिक आधार पर आवेश में आना एक गंभीर गलती होगी। जर्मनी या इटली या जापान की आंतरिक राजनीति से हमें कोई सरोकार नहीं है, ये उन देशों के लोगों का सरोकार है' (सुगतो बोस में उद्धत, पृष्ठ 221)।

इस बीच, भारत में राजनैतिक परिदृश्य बदल रहा था। भारत पर जापानी हमलों से आशंकित गांधी चाहते थे कि अंग्रेजों को तुरंत सत्ता छोड़ देनी चाहिए ताकि भारतीय जापानियों के साथ वार्तालाप कर सके। गांधी का मानना था कि जापानियों को भारत के खिलाफ कुछ भी शत्रुता नहीं थी लेकिन वे अंग्रेजों के प्रति शत्रुतापूर्ण थे। अगर अंग्रेजों ने भारत पर शासन करना जारी रखा तो जापानी भारत पर हमला करेंगे। इसलिए, वे चाहते थे कि अंग्रेज तुरंत भारत छोड़ दें और भारतीयों को अपने मामलों का प्रबंधन करने दें। 8 अगस्त, 1942 को गांधी ने भारतीयों के लिए 'करो या मरो' का नारा दिया और अंग्रेजों को तुरंत 'भारत छोड़ों' के लिए कहा, जिसके परिणामस्वरूप देशव्यापी विस्फोट हुआ। गांधी की स्थिति में यह बड़ा बदलाव बोस की सोच में अंग्रेजों पर अविलंब चोट करने की अनिवार्यता के साथ मेल खाती थी।

हालांकि, जनवरी, 1943 के मध्य तक ही जापान तक उनकी पनडुब्बी यात्रा की योजना की व्यवस्था हो सकी थी। फरवरी, 1943 में उन्होंने एशिया में अपना संघर्ष शुरू करने के लिए जर्मन तट छोड़ दिया। हालांकि, अंग्रेजों के खिलाफ अफ्रीका में और सोवियत संघ के खिलाफ जर्मन का आगे बढ़ना रोका जा चुका था। जल्द ही, युद्ध का रुख बदलने वाला था, लेकिन बोस निडर होकर अपने लक्ष्य की ओर बढ़ते गए। बदली हुई परिस्थितियों में भी जब 'भारत छोड़ो आन्दोलन को कुचल दिया गया था और मित्र देश की सेनाओं ने जर्मनी की प्रगति को रोक दिया था, तब भी उन्होंने अंग्रेजों के लिए खतरा पैदा कर दिया था।

12.3 प्रथम आई एन ए की स्थापना

ब्रिटिश, डच और फ्रांसीसी जैसी यूरोपीय औपनिवेशिक शक्तियों को उखाड़ फेंकने और दक्षिण-पूर्व एशिया में जापानी सेना के आगे बढ़ने से एक पूरी तरह से बदली हुई स्थिति उत्पन्न हुई। इन देशों में भारतीयों के साथ-साथ ब्रिटिश सेना में लड़ रहे और जापानियों द्वारा कैद भारतीय सैनिकों को लामबन्द और संगठित किया जाने लगा।

बर्मा, मलाया, थाईलैंड, इंडोनेशिया, हांगकांग और इन्डोचाइना में महत्वपूर्ण सकेन्द्रण के साथ कुल भारतीय जनसंख्या लगभग 20 लाख थी। 1941 में जापानी रणनीतिकारों ने भारतीयों सहित दक्षिण-पूर्व एशिया में राष्ट्रवादियों को अपने साथ सहयोग करने के लिए, इस्तेमाल करने की योजना तैयार की। मेजर फुजिवारा को भारतीयों के साथ संबंध स्थापित करने के लिए संपर्क व्यक्ति के रूप में नियुक्त किया गया था। फुजीवारा ने इंडियन इंडिपेन्डेंस लीग (आई आई एल) के ज्ञानी प्रीतम सिंह से संपर्क किया जिससे दोनों पक्षों के बीच सहयोग शुरू हुआ। यह सहमति हुई कि आई आई एल के कुछ सदस्य विजेता जापानी सेना के साथ प्रचार इकाइयों के हिस्से के रूप में मलाया में जाएँगे जहाँ दोनों इंडियन नेशनल आर्मी की स्थापना के लिए काम करेंगे जो भारतीय स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए जापानी सेना की सहायता करेगी। उन्होंने उन भारतीय सैनिकों की एक सेना को संगठित करने के लिए सबसे वरिष्ठ भारतीय अधिकारियों में से एक कप्तान मोहन सिंह से सम्पर्क किया, जो अब जापान की कैद में थे। प्रीतम सिंह ने अन्य भारतीय सैनिकों के साथ भी बैठकें की और उन्हें भारत की स्वतंत्रता के लिए लड़ने को कहा। कई दौर की चर्चा हुई और अन्त में मोहन सिंह आश्वस्त हो गए, विशेषकर जब भारतीय युद्धबंदियों का प्रशासन उन पर छोड़ दिया गया।

ब्रिटिश अधिकारियों ने भारतीय सैनिकों को स्वयं अपने हाल पर छोड़ दिया था। इसे भारतीय सैनिकों और अधिकारियों द्वारा विश्वासघात माना गया। जापानियों की बजाए भारतीय अधिकारियों के नियन्त्रण में रहने का वादा, शायद सबसे अच्छा प्रस्ताव था जो उन्हें उन परिस्थितियों में मिल सकता था। सेना को, भारतीय अधिकारियों के नेतृत्व में और केवल भारत की स्वतंत्रता के उद्देश्य के लिए, केवल भारतीय सैनिकों पर आधारित होना था।

1942 की शुरुआत में जब मलाया और सिंगापुर जापानी हाथों में आ गए, तब मोहन सिंह को और अधिक भारतीय सैनिकों की जिम्मेदारी सौंपी गई। भारतीय कैदियों की देखभाल के अलावा, मोहन सिंह, आई आई एल के साथ थाईलैंड, मलाया और सिंगापुर में भारतीय नागरिकों के सम्पर्क में भी आए। इन देशों से अंग्रेजों की तेज वापसी ने भारतीयों के साथ-साथ अन्य लोगों के बीच यह गहरी भावना पैदा की कि अंग्रेजों ने उनके साथ विश्वासघात किया है। नस्लीय भेदभाव की भी शिकायतें थी जब यूरोपीय विस्थापित व्यक्तियों ने सर्वोत्तम जहाजों और अन्य प्रावधानों और परिवहन के साधनों का उपयोग जापानी हमले से बचने के लिए अपने लिए विशेषाधिकारों के रूप में किया था। इसके अलावा, मलाया और अन्य देशों में प्रवासी भारतीय राष्ट्रवादी विचारों से काफी प्रभावित थे। इसने प्रीतम सिंह और मोहन सिंह के काम को आसान बना दिया क्योंकि भारतीय नागरिकों के साथ-साथ सैनिकों को उत्साह के साथ भर्ती किया गया और भारतीयों द्वारा आबाद अधिकांश इलाकों में आई आई एल की शाखाएँ खोली गई।

इस प्रकार जापानियों के साथ अपनी शक्ति को जोड़ने की भारतीय इच्छा के तीन कारण थे : (i) कम से कम बुद्धिजीवियों में गहरी राष्ट्रभावना थी; (ii) ऐसी भावना थी कि अंग्रेजों ने उन्हें अनादरपूर्वक त्याग दिया था और भागते समय नस्लीय भेदभाव का प्रयोग किया था; और (iii) भय का भी एक तत्व था क्योंकि उन्होंने अपने क्षेत्र में सैनिकों और नागरिकों के साथ क्रूर जापानी व्यवहार देखा था, विशेष रूप से चीनियों के साथ जिसका जापानियों ने सैकड़ों में नरसंहार किया था।

जब इस क्षेत्र में भारतीय नागरिकों और सैनिकों ने महसूस किया कि आई आई एल ने न केवल उन्हें जापानियों से सुरक्षा प्रदान की, बल्कि उन्हें भारतीय स्वतंत्रता की लड़ाई में शामिल करने का वायदा किया, तो वे इसमें शामिल होने के लिए तैयार थे। पुराने क्रांतिकारी योद्धा रास बिहारी बोस के साथ जापान में एक बैठक की व्यवस्था की गई। बैंकॉक से उड़ान भर रहे प्रीतम सिंह और सत्यानन्द पुरी की उनके हवाई जहाज के दुर्घटनाग्रस्त होने से मौत हो गई। लेकिन पाँच अन्य नेता टोकियो पहुँच गए।

बैठक में, संविधान का एक मसौदा तैयार किया गया था और यह निर्णय लिया गया था कि बाद में बर्मा और इन्डोनेशिया के नए विजित देशों के प्रतिनिधियों को भी आमन्त्रित किया जाना चाहिए। भारतीय स्वतंत्रता के लिए भारतीयों को लामबन्द और संगठित करने के लिए प्रतिनिधि अपने ठिकानों पर लौट गए। जापानी सुभाषचन्द्र बोस के भी सम्पर्क में थे, जो बर्लिन में थे और वहाँ से अपना रेडियो प्रसारण कर थे और भारतीयों को अंग्रेजों के खिलाफ उठ खड़े होने का आह्वान कर रहे थे। जून 1942 में, पूरे दक्षिण-पूर्वी एशिया से भारतीय प्रतिनिधियों का एक बड़ा सम्मेलन हुआ, जिसके लिए नेताजी ने एक संदेश भी भेजा।

काम पूरी गंभीरता के साथ शुरू हुआ और अच्छी तरह से आगे बढ़ा। क्रिप्स मिशन की विफलता और भारत में बढ़ती राजनैतिक गतिविधियों से 'भारत छोड़ो' आन्दोलन के रूप में अगस्त की शुरुआत तक विद्रोह की बहुत उम्मीद बन गई थी। इस क्षेत्र में भारतीयों में काफी उत्साह था और अगस्त के अन्त तक चालीस हजार सैनिक आई एन ए में शामिल हो गए थे। 16,300 सैनिकों की पहली डिवीजन कार्यवाही में जाने के लिए 10 सितम्बर 1942 तक तैयार थी। मोहन सिंह महत्वाकांक्षी थे और उन्होंने जापानियों से कहा कि वह दो लाख पचास हजार सैनिकों की एक सेना खड़ी करना चाहते हैं, जिसमें बड़े पैमाने पर नागरिक आबादी से भर्ती की जाएगी। वह इंडियन नेशनल आर्मी की जापानियों द्वारा औपचारिक सार्वजनिक मान्यता और अपनी फौज को जत्थों में प्रशिक्षण देने की सुविधा भी चाहते थे। लेकिन इन प्रस्तावों के प्रतिज्ञापन की प्रतिक्रिया बहुत उत्साहजनक नहीं थी।

उनके प्रस्तावों के प्रति जापान की रुखी प्रतिक्रिया और उनकी गतिविधियों में जापानी हस्तक्षेप ने आई आई एल और आई एन ए के नेताओं को परेशान कर दिया। उनमें से अनेक आई आई एल के अध्यक्ष रास बिहारी बोस से भी नाराज थे, क्योंकि वे मामले को आगे बढ़ाने में प्रभावशील नहीं रहे थे। जापानी हस्तक्षेप सामान्य था और इसका प्रतिरोध किया जा रहा था। बर्मा में वहाँ से चले गए भारतीयों लोगों की संपत्तियों का सवाल सबसे विवादास्पद पहलू बन गया। जापानियों ने इन संपत्तियों का नियंत्रण भारतीय हाथों में देने से इन्कार कर दिया, जिसको आई एन ए और आई आई एल अपने सैनिकों को प्रशिक्षण देने और सुसज्जित करने के लिए संसाधन जुटाने के लिए चाहते थे। सिंगापुर और मलाया में आई एन ए के विस्तार की अनुमति देने के लिए जापानी अनिच्छा ने भी मोहन सिंह को बहुत परेशान किया। इसके अलावा, उन्होंने और अन्य नेताओं ने महसूस किया कि जापानी चुपके-चुपके और साथ ही खुले तौर पर आई आई एल और आई एन ए को युद्ध के सभी भारतीय कैदियों पर नियंत्रण करने की अनुमति नहीं दे रहे थे। इसलिए भारतीयों को जापानी इरादों पर संदेह होने लगा।

स्थिति बदतर हो गई, और मोहन सिंह ने जापानियों को स्पष्ट रूप से बता दिया कि अगर वे भारत में अंग्रेजों की जगह लेने की कोशिश करेंगे तो भारतीय उनसे भी लड़ेंगे। उन्होंने मलाया में उनके दमनकारी और नस्लवादी व्यवहार की ओर भी इशारा किया। उन्होंने बर्मा में जापानी सैन्य अभियान के लिए आई एन ए के सैनिकों को देने से इन्कार कर दिया, और फिर दिसम्बर के अन्त तक आई एन ए को भंग करने का फैसला कर लिया। रास बिहारी, अपनी ओर से, स्थिति को बचाना चाहते थे। मोहनसिंह को उनके कुछ सहयोगियों के साथ जापानियों ने पकड़ लिया और अलग-थलग कर दिया। आई एन ए अब प्रभावी रूप से निष्क्रिय थी और ये सुभाषचन्द्र बोस थे जिन्होंने इसे इस क्षेत्र में आने के बाद पुनर्जीवित किया।

12.4 नेताजी का पूर्वी एशिया में आगमन और आजाद हिन्द फौज या द्वितीय आई एन ए का गठन

सुभाषचन्द्र बोस 2 जुलाई, 1943 को सिंगापुर पहुँचे और रास बिहारी से आई एन ए की कमान संभाली। उन्होंने भारतीय नागरिकों की भर्ती शुरू करके भर्ती की नीति में बदलाव किया। इस क्षेत्र में भारतीय नागरिकों में से विभिन्न क्षमताओं के लगभग तीस हजार लोग आई एन ए के रैंक में शामिल हुए। उन्होंने आजाद हिन्द लीग की भी स्थापना की जो इस क्षेत्र में भारतीय समुदाय से संपर्क करने की प्रभारी संस्था थी। जुलाई, 1944 तक आजाद हिन्द लीग की दो लाख सदस्यों वाली बहत्तर शाखाएँ थी। इसके अलावा, बोस ने रानी झांसी रेजिमेंट नाम से एक महिला रेजिमेंट भी बनाई, जिसमें लगभग एक हजार महिलाएँ सैनिकों के रूप में शामिल हुई। एक तमिल महिला लक्ष्मी स्वामीनाथन इस रेजिमेंट की कमांडर बनी।

प्रथम आई एन ए में, सत्ता के कई केन्द्र थे। मोहन सिंह सैन्य प्रशिक्षण और संचालन के प्रभारी थे, लेकिन वह अन्य आई एन ए के नीतिगत मामलों में आई आई एल की कार्य परिषद के अधीन थे, जिसके प्रमुख रास बिहारी थे। इन सभी को जापानियों के व्यापक नियन्त्रण में रखा गया था। दूसरी ओर, द्वितीय आई एन ए केवल नेताजी के प्रति प्रतिबद्ध रहा।

प्रथम आई एन ए से ही, अलग भर्ती और संगठन की ब्रिटिश नीति को छोड़ दिया गया था। अब 'लड़ाकू प्रजाति' ('मार्शल रेस') के बारे में कोई बात नहीं होती थी और विभिन्न जातीय और भाषायी पृष्ठभूमि के सभी सैनिकों को एक साथ एक इकाई में रखा गया था। बोस ने प्रशिक्षित और पेशेवर सैनिकों के साथ-साथ नागरिकों की भर्ती में भी इस नीति को जारी रखा।

अब मिश्रित रेजिमेंट बनाकर और आई एन ए के सैनिकों को राजनैतिक प्रशिक्षण देकर जातीय और क्षेत्रीय निष्ठाओं को व्यापक राष्ट्रीय भावनाओं के अन्तर्गत शामिल करने के सभी प्रयास किए गए। वीरता और लड़ाकूपन के अतीत की काल्पनिक परंपराओं के निर्माण की कोशिश सैनिकों को औपनिवेशिक परंपरा से दूर करने के लिए किया गया था। यह प्रयास सैनिक बलों में भारतीयकरण और राष्ट्रीयकरण करने का था।

प्रथम आई एन ए के दौरान ही मिश्रित रेजिमेंटों के नाम कुछ समुदायों और क्षेत्रों की बजाए राष्ट्रवादी नेताओं के नाम पर रखे गए थे। इस प्रकार, गांधी, आजाद और नेहरू ब्रिगेड थे। सुभाषचन्द्र बोस इस परंपरा पर कायम रहे। उन्होंने अपने संघर्ष के साथ-साथ आई एन ए के संघर्ष को भी भारत में हो रहे व्यापक राष्ट्रवादी संघर्ष के हिस्से के रूप में देखा।

बोस ने 21 अक्टूबर,, 1943 को सिंगापुर ने आजाद हिन्द सरकार के गठन की घोषणा की। उन्होंने स्वयं यह घोषणा-पत्र लिखा। इसने भारतीय लोगों से 'हमारे ध्वज के इर्द-गिर्द लामबंद होने और भारत की स्वतंत्रता के लिए प्रहार करने' का आह्वान किया। इसने आगे घोषणा की कि 'अस्थायी सरकार' अपने नागरिकों को 'धार्मिक स्वतंत्रता, साथ ही समान अधिकार और समान अवसर' की गांरटी देगी। यह पूरे देश की सुख-समृद्धि को समान रूप से आगे बढ़ाने और अतीत में एक विदेशी सरकार द्वारा चालाकी से प्रोत्साहित किए गए सभी मतभेदों को पार करने के अपने दृढ़ संकल्प की घोषणा करता है' (सुगतो बोस में उद्धृत, पृष्ठ 254-55)।

दक्षिण-पूर्व एशिया में ब्रिटिश भारतीय सेना के चालीस हजार से अधिक सैनिकों की निष्ठा में यह आमूलचूल परिवर्तन महत्वपूर्ण था। यह थोड़े समय में ही हुआ और यह

एक प्रेरित बल के रूप में विकसित हुआ, जिसने अपने पूर्व नियोक्ताओं और प्रशिक्षकों के खिलाफ, लगभग 1857 के विद्रोह के समान, लड़ाई लड़ी। निस्संदेह सबसे महत्वपूर्ण प्रेरणा राष्ट्रवाद की भावना थी। सुभाषचन्द्र बोस की व्यापक लोकप्रियता, उनका करिश्माई व्यक्तित्व, उनकी प्रेरक शक्तियाँ, भारतीय स्वतंत्रता के लिए उनकी स्पष्ट और शहरी प्रतिबद्धता और धर्म, जाति, क्षेत्र और भाषा की सीमाओं के पार भारतीय एकता के विचार के प्रति उनका भावुक लगाव एक और महत्वपूर्ण कारक था।

अगले दो वर्षों के लिए उनकी व्यस्तता को अवधियों में विभाजित किया जा सकता है। इस क्षेत्र में उनके टिके रहने के पहले वर्ष में इस संभावना को लेकर भारतीयों में काफी उत्साह था कि इंडियन नेशनल आर्मी जापानियों की मदद से भारत में ब्रिटिश सुरक्षा को भंग कर देगी जिससे राष्ट्रव्यापी, उपनिवेशवाद-विरोधी विद्रोह हो जाएगा। दूसरी अवधि में, 1944 के मध्य से जब मित्र राष्ट्रों की सेना के प्रभुत्व के बाद इंडियन नेशनल आर्मी और जापानी सेना को संयुक्त रूप से पूर्वोत्तर भारत के साथ-साथ दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों से पीछे हटना पड़ा, तब बोस ने एक अलग भूमिका निभाई। उन्होंने एक ऐसे नेता की भूमिका निभाई जो अपनी पीछे हटने वाली फौजों के मनोबल को ऊँचा रखने और स्वतंत्रता प्राप्त करने के अन्य तरीकों को खोजने की पूरी कोशिश करेगा। हालांकि, उन्होंने भारत के लिए स्वतंत्रता हासिल करने की उम्मीद कभी नहीं छोड़ी।

1943 के अन्त तक लोगों में उनके आह्वान के प्रति भारी जोश था। हजारों भारतीय सैनिकों और नागरिकों ने स्वेच्छा से लड़ने के साथ-साथ धन और सामग्री से मदद की। नेता जी ने उन लोगों को इस संघर्ष के लिए अच्छी तरह से तैयार करने और समर्थन करने का आह्वान किया क्योंकि 'भारत के बाहर के भारतीय लोग, विशेष रूप से पूर्वी एशिया में भारतीय, एक लड़ाकू सेना का संगठन करने जा रहे हैं जो भारत के कब्जे वाली ब्रिटिश सेना पर हमला करने के लिए पर्याप्त शक्तिशाली होगा। जब हम ऐसा करते हैं तो ना केवल देश में नागरिक आबादी के बीच बल्कि उस भारतीय सेना के बीच भी एक क्रांति शुरू हो जाएगी जो अभी ब्रिटिश झंडे के नीचे खड़ी है। इस प्रकार जब ब्रिटिश सरकार पर भारत के भीतर और बाहर दोनों ओर से हमला किया जाएगा तो वह ढह जाएगी और भारतीय जनता फिर से अपनी स्वतंत्रता हासिल कर लेगी' (सुगतो बोस में उद्धृत, पृष्ठ, 245-46)।

बोस ने फैसला किया कि बर्मा उनकी सैन्य युद्धाभ्यास रणनीति के लिए महत्वपूर्ण होगा। जब जापानी फील्ड मार्शल ने सुझाव दिया कि आई एन ए को केवल फील्ड प्रचार इकाई के रूप में काम करना चाहिए, तो बोस ने इसे तुरन्त अस्वीकार कर दिया और माँग की कि आई एन ए ब्रिगेड को अग्रिम लड़ाकू इकाइयों के रूप में इस्तेमाल किया जाना चाहिए। जापानी शुरू में आई एन ए के एक डिविजन के लगभग दस हजार सैनिकों को कार्यवाही में शामिल करने के लिए सहमत हुए। मोहम्मद जमान कियानी ने इस इकाई की कमान संभाली। इस डिवीजन को आगे तीन रेजीमेंन्टों में विभाजित किया गया, जिनका नाम गांधी, नेहरू और आजाद के नाम पर रखा गया था, जो देश में राष्ट्रवादी आन्दोलन के साथ एकता का प्रतीक था। इनमें से सबसे अच्छे सैनिकों को शाहनवाज खान के नेतृत्व में एक गुरिल्ला इकाई बनाने के लिए अलग रखा गया जो पहले कार्यवाही में जाएगी। सैनिकों ने इस इकाई का नाम 'सुभाष ब्रिगेड' रखा।

सैनिकों का मनोबल बढ़ाने के लिए बोस उनके शिविरों में गए और उनके साथ अपने भोजन भी साझा किए। सभी जातियों और समुदायों के सैनिकों को एक साथ खाने के लिए राजी किया गया जिससे उनके बीच धार्मिक और भाषायी सीमाओं को पार करते हुए एक साझा संबंध बन गया। राष्ट्रीय एकता का यह प्रदर्शन महत्वपूर्ण था, भले ही यह विदेशी धरती पर हो रहा था, क्योंकि अधिकाधिक बढ़ता तीखा साम्प्रदायिक विभाजन देश को कुतरता जा रहा था।

बोध प्रश्न 1

1) यूरोप में सुभाषचन्द्र बोस की गतिविधियों की चर्चा कीजिए।

....

....

....

....

....

2) प्रथम आई एन ए का गठन कैसे हुआ? इसके संचालन में क्या समस्या थी?

....

....

....

....

....

3) आजाद हिन्द फौज या द्वितीय आई एन ए की मुख्य विशेषताओं की चर्चा कीजिए।

....

....

....

....

12.5 आजाद हिन्द फौजः भारत की मुक्ति के लिए युद्ध

22-24 अक्टूबर, 1943 को आधी रात को आजाद हिन्द सरकार ने ब्रिटेन और अमेरिका के खिलाफ युद्ध की घोषणा कर दी। अमेरिका को इसलिए शामिल किया गया क्योंकि भारतीय धरती पर अमेरिकी सेनाएँ थीं। हालांकि संयुक्त राज्य अमेरिका वास्तव में भारतीय स्वतंत्रता की माँगों के प्रति सहानुभूति रखता था।

एक वर्ष के भीतर, लाखों भारतीय प्रवासियों ने दक्षिण-पूर्व एशिया में नागरिकता की शपथ पर हस्ताक्षर करके घोषणा कीः

'मैं, आजाद हिन्द संघ (इंडियन इंडिपेन्डेंस लीग) का एक सदस्य ईश्वर के नाम पर सत्यनिष्ठा से वादा करता हूँ और यह पवित्र शपथ लेता हूँ कि मैं आजाद हिन्द की अस्थाई सरकार के प्रति पूरी तरह से वफादार रहूँगा, और सुभाषचन्द्र बोस के नेतृत्व में, अपनी मातृभूमि की स्वतंत्रता के लिए कोई भी बलिदान देने के लिए हमेशा तैयार रहूँगा' (सुगतो बोस में उद्धृतः 259)।

जापान सरकार ने आजाद हिन्द सरकार को कूटनीतिक और सैन्य मदद का वादा किया। बोस ने उन्हें आई एन ए को एक अधीनस्थ संगठन के रूप में नहीं बल्कि एक सहयोगी सेना के रूप में मानने के लिए राजी कर लिया। अंडमान और निकोबार द्वीप समूह का कानूनी नियंत्रण जापानियों द्वारा आजाद हिन्द सरकार को दिया गया था, हालांकि जापानियों ने अपना सैन्य नियंत्रण बरकरार रखा था।

जनवरी 1944 में आजाद हिन्द सरकार के मुख्यालय को सिंगापुर से बर्मा में स्थानांतरित कर दिया गया। बोस ने एक पूर्ण कैबिनेट और मंत्रियों, आजाद नेशनल बैंक, अपने

स्वयं के डाक टिकट और एक राष्ट्रीय मुद्रा के साथ सरकार का एक वैकल्पिक ढाँचा तैयार किया।

'सुभाष ब्रिगेड' के नाम से जानी जाने वाली अग्रिम छापामार इकाई पहले ही वहाँ जा चुकी थी। जापानी सेना भी आक्रमण के लिए तैयार थी। हालांकि जापानी आई एन ए सैनिकों के छोटे समूहों को बड़ी जापानी इकाइयों के साथ जोड़ना चाहते थे, परन्तु बोस ने भारतीय सैनिकों को जापानी कमान और नियन्त्रण के अधीन करने से इंकार कर दिया, और आई एन ए के लिए एक स्वतंत्र भूमिका और पहचान पर जोर दिया। उनका यह भी दृढ़ विश्वास था कि भारतीय सैनिकों का बलिदान भारतीय स्वतंत्रता के लिए अधिक मायने रखता था।

यह सहमति हुई कि आई एन ए की एक बटालियन ब्रिटिश पश्चिम अफ्रीकी डिवीजन के खिलाफ लड़ाई में शामिल होगी। उसके बाद आई एन ए भारतीय क्षेत्र में कोहिमा और इंफाल की ओर बढ़ेगा। फरवरी में कुछ आई एन ए इकाइयों ने बर्मा में अंग्रेजों के खिलाफ सफलतापूर्वक लड़ाई लड़ी थी। फिर मार्च, 1944 में, आई एन ए जापानी सेनाओं के साथ, इन्डो बर्मा सीमा को पार करके इंफाल और कोहिमा की ओर बढ़ीं। भारतीय सैनिक अपने ही देश में होने से बहुत खुश और उत्साहित थे। इस मोर्चे पर, लगभग 84,000 जापानी और 12,000 आई एन ए सैनिकों ने लगभग एक लाख पचास हजार ब्रिटिश सैनिकों का सामना किया। जापानी सैनिक अपनी गति बनाए रखने के लिए अपने साथ ज्यादा राशन नहीं लाए थे और उन्होंने कोहिमा और इंफाल पर शीघ्र कब्जा करने पर अपनी आशा टिका रखी थी। अप्रैल, 1944 में, वे इंफाल और कोहिमा पर कब्जा करने के बहुत करीब लग रहे थे, क्योंकि उन्होंने इंफाल की घेराबन्दी कर ली थी। आई एन ए के सैनिक बहुत अच्छे से लड़ रहे थे और उनका हौसला बहुत बुलन्द था। उन्होंने इंफाल से थोड़ी दूर मोइरंग में भारतीय तिरंगा झंडा फहराया था। आजाद हिन्द के नेताओं, सैनिकों और आमतौर पर इसके अनुयायियों में काफी आशावाद था। एक 'स्वतंत्र भारत' बहुत ही पास आता लग रहा था।

हालांकि, ब्रिटिश नेतृत्व वाली सेनाओं द्वारा अब दिए गए कड़े प्रतिरोध के कारण, घेराबन्दी लम्बी हो गई थी। घेराबन्दी के साढे तीन माह के दौरान कठिन परिस्थितियों में उनका सीमित राशन खत्म हो रहा था। जबकि ब्रिटिश सैनिकों को वायुमार्ग से निरन्तर अमेरिकी आपूर्ति द्वारा राशन की आपूर्ति की जा रही थी, जापानी वायु समर्थन बहुत सीमित और अर्प्याप्त था। मई, 1944 में विश्व युद्ध के कुछ भीषण युद्ध यहाँ लड़े गए थे। इन लड़ाइयों में आई एन ए के ब्रिगेड भी शामिल थे।

दुर्भाग्य से, उस वर्ष मानसून की बारिश जल्दी आ गई। बहुत तेज बारिश शुरू हो गई जिसने रास्तों को मिटा दिया और पूरे क्षेत्र को दलदली बना दिया। लड़ाई के मोर्चे पर करने के लिए कुछ ज्यादा नहीं था और इंतजार करना ही एकमात्र विकल्प था। पहले से ही परिवहन की समस्याओं और आपूर्ति की कमी का सामना कर रहे आई एन ए और जापानी सैनिक मलेरिया से पीड़ित हो रहे थे और वन क्षेत्रों में फँसे हुए दवाओं को प्राप्त करना मुश्किल था। फिर भी, सैनिकों के साथ-साथ दक्षिण-पूर्व एशिया में रह रहे भारतीयों की मनोदशा अभी भी आशावादी थी। गतिरोध पूरे जून और जुलाई के शुरुआती सप्ताह में जारी रहा। फिर, दस जुलाई को, जापानियों ने बोस को सूचित किया की अब वहाँ रहना कठिन होगा और उन्हें युद्ध के उस रंगमंच से पीछे हटना होगा। आई एन ए की इकाइयाँ भी बहुत अव्यवस्थित थीं क्योंकि मलेरिया सहित कई बीमारियों के प्रसार के साथ-साथ भोजन और दवाओं की भारी कमी थी। अब पीछे हटना ही एकमात्र विकल्प था जो जुलाई के तीसरे सप्ताह में हुआ। बाद में छब्बीस जुलाई को जापान ने पूर्वोत्तर भारत में अभियान को स्थागित करने की घोषणा की।

पीछे हटते हुए बीमारियों और भूखमरी के कारण बहुत से सैनिक मारे गए और अनेक बीमार और घायल हुए।

बोस ने 21 अगस्त, 1944 को एक रेडियो सम्बोधन में स्वीकार किया कि पूर्वोत्तर भारत पर नियंत्रण करने की आई एन ए की कोशिश सफल नहीं रही थी। उनके अनुसार,, सफलता की कमी के लिए जल्दी मानसून का आना और यातायात की समस्या जिम्मेदार थी। मानसून आने से पहले आई एन ए और जापानी सैनिक बहुत अच्छा कर रहे थे, लेकिन उसके बाद इस स्थिति को बनाए रखना मुश्किल हो गया। उन्होंने उम्मीद नहीं खोई और सैनिकों को अगले दौर के कार्य के लिए तैयार रहने का आह्वान किया।

हालांकि पूर्वोत्तर कार्यवाही में भाग लेने वाले आई एन ए के अधिकांश सैनिकों को अब लड़ाई से अलग कर दिया गया था, लेकिन सैनिकों का एक बड़ा दल मलाया से बर्मा आया था जो कार्यवाही के लिए तैयार थे। तब तक युद्ध बर्मा तक पहुँच चुका था और ब्रिटिश और अमेरिकी सेनाएँ जापानियों को वहाँ से खदेड़ने की कोशिश कर रहीं थी। आई एन ए के जवान भी लड़ाई में शामिल थे। उन्हें मलाया में भी ब्रिटिश अमेरिकी सेना के खिलाफ तैनात किया गया था।

बर्मा में इरावदी के तटपर, आई एन ए फौजों ने फरवरी, 1945 में ब्रिटिश सेना का सामना किया। उन्होंने अनेक अंग्रेजों को हताहत किया और कुछ समय के लिए नदी पार करने से रोक दिया। अमेरिकीयों के भारी वायु समर्थन के बावजूद, ब्रिटिश सेना ज्यादा आगे नहीं बढ़ी और मार्च, 1945 में भी गतिरोध जारी रहा।

अब कुछ आई एन ए के अधिकारों अंग्रेजों के पक्ष में चले गए थे। इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि बर्मा की सरकार, अन्ततः जापानी हार को भांपते हुए उनके खिलाफ हो गई और आगे बढ़ रहे अंग्रेजों के पक्ष में हो गई। इसने बोस के लिए एक बड़ी समस्या पैदा कर दिया। उन्होंने बर्मा की सरकार के साथ बातचीत की कि उनके सैनिक एक दूसरे के खिलाफ नहीं लड़ेंगे।

हालांकि, इन समस्याओं के बावजूद, आई एन ए के सैनिकों ने अप्रैल में माउंट पोपा के आसपास बहादुरी से लड़ाई लड़ी। लेकिन बेहतर ब्रिटिश सेना के सामने बहुत सारे सैनिकों को खोने के बाद उन्हें पीछे हटना पड़ा। अब यह स्पष्ट हो गया था कि आई एन ए यह युद्ध नहीं जीत सकती, लेकिन वह लड़ती रही। 29 अप्रैल, 1945 को प्रेम कुमार सहगल को अंग्रेजों ने पकड़ लिया और 18 मई को शाहनवाज खान और गुरूबख्श सिंह ढिल्लों को बन्दी बना लिया गया।

12.6 जापान की पराजय और विश्व युद्ध की समाप्ति

यद्यपि बर्मा में युद्ध में आई एन ए की हार हुई थी, लेकिन बोस ने हार नहीं मानी थी। उन्होंने मलाया और थाईलैंड में लड़ने के लिए अपनी सेना भेजी। तमाम विपरीत परिस्थितियों के बावजूद, बोस को अन्तिम जीत की उम्मीद थी। अब उन्होंने थाईलैंड में अपनी सेना इकट्ठी की और मदद के लिए थाई सरकार से बातचीत की। उन्हें अभी भी विश्वास था कि वह अपने देश की स्वतंत्रता के लिए एक और आक्रमण करने में सक्षम होंगे।

लेकिन 6 और 9 अगस्त, 1945 को जापान में हिरोशिमा और नागासाकी पर दो परमाणु बम गिराए गए जिससे पूर्वी-एशिया में युद्ध समाप्त हो गया। जापान ने आत्मसमर्पण कर दिया, और अब नेताजी को अपनी रणनीति में मौलिक संशोधन करना पड़ा। हार के बाद भी नेताजी निराश नहीं हुए थे। उन्होंने अपने बचे हुए सैनिकों को घोषणा की कि 'दिल्ली के रास्ते बहुत हैं और दिल्ली अभी भी हमारा लक्ष्य है'। उनका दृढ़ विश्वास था कि 'भारत जल्द स्वतंत्र हो जाएगा'।

विभिन्न कारणों से आई एन ए सैन्य रूप से सफल नहीं हो सकी। आई एन ए को राष्ट्रवादी आदर्शवाद और इस विश्वास के आधार पर खड़ा किया गया था कि वे जापानियों के साथ मिलकर, कम से कम पूर्वोत्तर भारत में, ब्रिटिश सेना को जल्दी से पराजित करने में सक्षम होंगे और इसके परिणामस्वरूप भारत में एक आम विद्रोह होगा जिससे देश मुक्ति की ओर अग्रसर होगा। आर्दशवादी उत्साह और नेताजी के करिश्मे से प्रेरित होकर हजारों नागरिक आई एन ए में शामिल हुए। उन्हें एक आधुनिक पेशेवर सैनिक के लिए आवश्यक पर्याप्त सैनिक प्रशिक्षण नहीं मिला, और न ही उनके पास इस तरह के प्रशिक्षण को सहने का धैर्य और आन्तरिक शक्ति थी। इसके परिणामस्वरूप अनुशासन की कमी थी और कई लोग पलायन भी कर गए। इसके अलावा, सैनिकों के लिए नियमित भोजन और वेतन के लिए सैन्य सहायता और धन कभी भी पर्याप्त नहीं था। अक्सर सैनिकों को वेतन नहीं बल्कि केवल जेबखर्ची मिलती थी। 1944 तक जूते भी कम आपूर्ति में थे। खर्चे के लिए बोस की अस्थाई व्यवस्था राज्य द्वारा वित्त पोषित पेशेवर सैन्य प्रणाली का कोई विकल्प नहीं थी। इस प्रकार, आई एन ए सैनिकों के लिए लड़ाकू सेना के लिए आवश्यक रख-रखाव का स्तर उपलब्ध नहीं था। इससे सैनिकों में विभिन्न बीमारियाँ हुईं। इसलिए, यह ज्यादातर आदर्शवादी उत्साह और बोस का करिश्माई नेतृत्व था जिसने सैनिकों को बहादुरी के कारनामें करने के लिए प्रेरित किया। लेकिन यह बहुत लंबे समय तक नहीं चल सका और जैसे-जैसे लड़ाई लम्बी होती चली गई सैनिकों के मनोबल और प्रेरणा में गिरावट आई।

बोस के सामने अब एक और बड़ी समस्या भी मुँह बाए खड़ी थी। जब तक वे जापान और फिर सिंगापुर पहुँचे, तब तक युद्ध में जापान की किस्मत पलटने लगी थी। अप्रैल 1943 तक प्रशांत और दक्षिण पूर्व एशिया दोनों में जापान का प्रभुत्व था। लेकिन 1943 में मध्य से लेकर 1943 के अंत तक कुछ क्षेत्रों में मित्र देशों की सेनाएँ प्रभुत्व प्राप्त कर रही थी। 1944 तक, जापानी सरकार दूर-दराज के इलाकों में अपनी सेना की लड़ाई के लिए भी पर्याप्त साधनों की आपूर्ति नहीं कर सकी। भारतीय क्षेत्र के अन्दर अभियान के दौरान, जापानी और भारतीय सैनिकों को भरण-पोषण के लिए पर्याप्त राशन और कपड़े नहीं मिले जिसके कारण बड़ी संख्या में बीमारियाँ और मृत्यु हुई। यूरोप और प्रशान्त क्षेत्र में धुरीय शक्तियों की हार ने नेताजी और आई एन ए के लिए और अधिक समस्याएँ खड़ी कर दीं। हालांकि, आई एन ए सैन्य मोर्चे पर जो हासिल करने में विफल रही, इसने राजनीतिक मोर्चे पर कहीं उससे ज्यादा हासिल कर लिया।

12.7 आई एन ए सैनिकों पर मुकदमा और राष्ट्रीय उभार

दिल्ली के लाल किले में आई एन ए अधिकारियों और सैनिकों के मुकदमे ने भारतीयों में अंग्रेजों के खिलाफ ऐसी प्रबल भावनाएँ जगाई कि आई एन ए और उसके मुख्य अधिकारी देश के हर घर में जाने जाने लगे। आई एन ए नेताओं और सैनिकों के मुकदमें ने भारत में राष्ट्रवादी राजनैतिक माहौल को चरम सीमा तक फिर से सक्रिय कर दिया। वायु सेना, नौ सेना, और यहाँ तक कि थल सेना के जवान भी राष्ट्रवादी विचारधारा से प्रभावित हो गए और आई एन ए के शहीदों और जीवित सैनिकों को उच्च सम्मान दिया गया। आम लोगों ने पूरे भारत में हजारों लाखों की संख्या में विरोध किया, सरकारी बलों के साथ जमकर लड़ाई की और घायल हुए और यहाँ तक कि अपनी जानें भी गंवा दी। आई एन ए आन्दोलन के बाद के प्रभाव युद्ध के मैदान में इसकी ठोस उपलब्धियों की तुलना में कहीं अधिक व्यापक और शक्तिशाली रहे।

आई एन ए कैदियों का मुकदमा उस राष्ट्रवादी आन्दोलन के लिए वरदान साबित हुआ, जिसे आई एन ए की हार और भारत छोड़ो आन्दोलन के दमन के बाद झटका लगा था। लोग उत्साहित थे और आई एन ए के समर्थन में सड़कों पर उतर आए। राष्ट्रवादी समाचार-पत्रों ने आजाद हिन्द फौज द्वारा की गई लड़ाई की वीरतापूर्ण कहानियों को

व्यापक रूप से प्रकाशित और प्रचारित किया। कांग्रेस ने अदालत में कैदियों का बचाव करने का फैसला किया और एक अनुभवी राष्ट्रवादी वकील भुलाभाई देसाई को यह काम सौंपा। अन्य नेताओं ने भी कानूनी बचाव सहित विभिन्न तरीकों से उनका समर्थन किया।

तीन महत्वपूर्ण आई एन ए अधिकारियों, सहगल, शाहनवाज और ढिल्लों का मुकदमा 5 नवम्बर, 1945 को शुरू हुआ लेकिन इसे स्थागित कर दिया गया और 21 नवम्बर को इसे फिर से शुरू किया गया। इस तारीख को उनके अभियोजन के खिलाफ गुस्से भरे और हिंसक विरोध प्रदर्शन हुए थे। कई शहरों में सेना और पुलिस के साथ झड़पें हुई और कई प्रदर्शनकारी मारे गए और घायल हुए। दोनों पार्टियों के झंडे साथ लेकर चलने वाले कांग्रेस और मुस्लिम लीग के समर्थकों के बीच एकता का प्रदर्शन हुआ।

औपनिवेशिक सरकार के सशस्त्र बलों के सभी अंगों में भारतीयों ने किसी ना किसी रूप में नाराजगी व्यक्त की। कलकत्ता में तैनात रॉयल इंडियन एयर फोर्स ने खुले तौर पर बंगाल कांग्रेस कमेटी को भारत के बहादुर सैनिकों के महान आदर्श की प्रशंसा करते हुए एक संदेश भेजा, और भारत सरकार की निरंकुश कार्यवाही के खिलाफ अपना 'सबसे मजबूत विरोध दर्ज किया और वास्तव में, भारत के इन सबसे चमकीले रत्नों पर मुकदमा चलाने के लिए ब्रिटिश सरकार का विरोध किया' (घोषः 24)।

सेना में भी, यह रिपोर्ट थी कि 'आई एन ए मामले भारतीय सेना की पूरी इमारत को गिराने की धमकी दे रहे थे' (घोषः 25)।

अधिकांश भारतीय अधिकारी आई एन ए सैनिकों पर मुकदमा चलाने के खिलाफ थे। रॉयल इंडियन नेवी (आर आई एन) में, इसने खतरनाक मोड़ ले लिया जब मुंबई, कोलकाता, कराची, चेन्नई, कोचिन, विसाखापट्टम मंडपम और अंडमान में तैनात 78 जहाजों के भारतीय सैनिकों ने विद्रोह कर दिया। केवल लगभग दस जहाज अपेक्षाकृत अप्रभावित रहे। विद्रोहियों ने अन्य बातों के अलावा आई एन ए कैदियों की तत्काल रिहाई और उनके मुकदमें को समाप्त करने की माँग की।

इस प्रकार, मुकदमों ने न केवल पूरे देश में आन्दोलन और विरोध की लोकप्रिय राष्ट्रवादी लहरें पैदा की, बल्कि उन्होंने सशस्त्र बलों के बीच मजबूत राजनैतिक और राष्ट्रवादी भावनाएँ भी पैदा कीं। अदालत ने तीन कैदियों को आजीवन निर्वासन की सजा सुनाई, लेकिन ब्रिटिश भारतीय सेना के कमांडर इन चीफ द्वारा सजा को कम करके उसके फैसले को उलट दिया गया। सेना में विद्रोह और देश में एक आम विद्रोह का भय था। तीनों अधिकारियों को मुक्त कर दिया गया और लाखों लोगों ने सड़कों पर उनका स्वागत किया और नारेबाजी की।

स्थिति बहुत विस्फोटक लग रही थी, और अंग्रेजों ने अब इसे सुलझाने की कोशिश की। उन्होंने जल्दी से कैबिनेट मिशन भेजकर सत्ता के हस्तांतरण का विचार सामने रखा और उसके लिए तौर-तरीके तय करने की बात कही।

12.8 आजाद हिन्द फौज की उपलब्धियाँ

आजाद हिन्द फौज की महत्वपूर्ण उपलब्धियों में से एक समाज और राजनीति में व्याप्त गहरे साम्प्रदायिक विभाजन के समय हिन्दू-मुस्लिम एकता थी। इसके अलावा, इसने भारत के सभी क्षेत्र के लोगों को एक ध्वज के नीचे लाकर जाति और क्षेत्रीय स्तर पर एकता भी हासिल की। इसने न केवल प्रशासनिक भूमिकाओं में बल्कि सेना में भी महिलाओं को शामिल करके लैंगिक समानता हासिल करने का प्रयास किया।

आई एन ए के राजनैतिक लाभ बहुत अधिक थे। इसने विदेशों में भारतीयों के साथ-साथ देश में भी राष्ट्रवाद की जबरदस्त भावना पैदा की और भारत छोड़ो आंदोलन की समाप्ति के बाद औपनिवेशिक शासकों के खिलाफ एक और संभावित लड़ाई के लिए उनमें फिर से ऊर्जा भर दी। काफी महत्वपूर्ण रूप से, आई एन ए अपने खत्म होने

के बाद भी एक महत्वपूर्ण और एक प्रसिद्ध ध्येय बना गया और यहाँ तक कि सशस्त्र बल भी इससे बहुत प्रभावित हुए। अब अंग्रेजों को यह बिल्कुल स्पष्ट हो गया था कि वे भारतीय सैनिकों की वफादारी पर भरोसा नहीं कर सकते।

इस तरह, आई एन ए का राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया के साथ-साथ विऔपनिवेशिकरण पर भी काफी व्यापक प्रभाव पड़ा।

बोध प्रश्न 2

1) ब्रिटिश सेना के खिलाफ आई एन ए की सैन्य लड़ाइयों का वर्णन कीजिए।

....

....

....

....

....

2) भारत के स्वतंत्रता संग्राम पर आई एन ए का क्या प्रभाव पड़ा?

....

....

....

....

12.9 सारांश

सुभाषचन्द्र बोस, जिन्हें नेताजी के नाम से जाना जाता है, द्वारा गठित आजाद हिन्द फौज राष्ट्रवादी ध्वज के तहत् दक्षिण-पूर्व एशिया में भारतीयों को लामबन्द करने और संगठित करने में एक प्रमुख कारक साबित हुई। सैनिकों के अलावा हजारों भारतीय नागरिक अपने देश की आजादी के लिए लड़ने के लिए सेना में शामिल हुए। इस क्षेत्र के लाखों भारतीयों ने धन और जीवनाधार प्रदान करके इसका समर्थन किया। प्रवासी भारतीयों को अपने स्वदेश के साथ जोड़ने में इसकी एक अभूतपूर्व भूमिका थीं।

अपने सैन्य अस्तित्व के समाप्त होने के बाद भी देश में भारतीयों के बीच उत्साह पैदा करने में आई एन ए की भूमिका और भी महत्वपूर्ण थी। इसने न केवल नागरिक आबादी के बीच बल्कि सशस्त्र बलों में भारतीयों के बीच भी जबरदस्त राष्ट्रवादी और उपनिवेशवाद विरोधी भावनाएँ पैदा कीं। इसने औपनिवेशिक सरकार की नींव को गंभीर रूप से कमजोर कर दिया और अन्ततः उसका अन्त हो गया।

12.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) भाग 12.2 देखें।

2) भाग 12.3 देखें।

3) भाग 12.4 देखें।

बोध प्रश्न 2

1) भाग 12.5 और 12.6 देखें।

2) भाग 12.7 और 12.8 देखें।